ज्ञान तत्व अंक 148

(क) लेख, ग्लोबल वार्मिंग और गांधी की भूल।

(ख) लेख, महात्मा गांधी और डा0 भीमराव अम्बेडकर ।

(ग) वर्तमान समाजिक वतावरण पर प्रश्न और मेरा विस्तृत उत्तर ।

(घ) श्री सत्यदेव गुप्त सत्य, नयागंज, रूदौली, फैजाबाद , यू0पी0, का प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(च) श्री ईश्वर दयाल जी नालन्दा बिहार, का ''यदि मै तानाशाह होता'' शीर्षक प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(छ) श्री राजीव भगवान, झांसी, उत्तर प्रदेश। का प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(ज) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट 455 खारी बावली, दिल्ली–6, का प्रश्न और मेरा विस्तृत उत्तर।

(झ) श्री राधा कृष्ण गेरा, अशोक विहार फेज 1 दिल्ली। का प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(ट) श्री विश्वनाथ सिंह, हिल्सा, नालंदा, बिहार। का प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(ठ) श्री अमर सिंह आर्य, जयपुर। गांधी जी और स्वामीविवेका नन्द जी के विचारो प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(क) ग्लोबल वार्मिंग और गांधी की भूल

यदि हम मानव स्वभाव ताप वृद्धि को लोकतांत्रिक जीवन पद्धति की असफलता के साथ जोड़कर देखना चाहें तो सम्पूर्ण विश्व में लोकतांत्रिक जीवन पद्धति भी संकट में है और लोकतांत्रिक शासन पद्धति भी। क्योंकि सम्पूर्ण विश्व के मानव स्वभाव में लगातार ताप वृद्धि हो रही है। यदि हम पिछले पचास वषों का आकलन करें तो यह ताप वृद्धि मोटे – मोटे अनुमान से पांच डिग्री तक कही जा सकती है अर्थात् प्रतिवर्ष एक डिग्री किन्तु सबसे खतरनाक चिन्ता यह है कि बीस वर्ष पहले यह वृद्धि .05 डिग्री होगी तो अब बढकर .15 डिग्री प्रतिवर्ष हो गयी होगी और वृद्धि की रफ्तार बढ़ती जा रही हैं यह ताप वृद्धि दुनियॉ के सभी देशों में बढ़ रही है तथा परिवार से लेकर स्थानीय तक इसका प्रभाव समान रूप से देखा जा सकता है। धार्मिक सामाजिक समाज सुधारकों तक के स्वभाव में इस ताप वृद्धि का असर है।

मानव स्वभाव में यह परिवर्तन एक बहुत ही खतरनाक संकेत है। इस स्वभाव परिवर्तन के कारण परिवार व्यवसायी लगातार टूट रही है। समाज में भी लगातार झगड़े बढ़े हैं। छोटी–छोटी बातों में ही लड़ाई झगड़े मारपीट आम बात हो गई है। नैतिकता के सभी मापदण्ड छोटे पड़ते जा रहे हैं। आपसी रिश्ते कलंकित हो रहे हैं। स्वार्थ बढ़ रहा है। कानून व्यवस्था के प्रति विश्वास घट रहा है और अपने बल प्रयोग के प्रति विश्वास बढ़ रहा है दुनिया के देशों में भी परस्पर संबंधों में अविश्वास बढ़ रहा है। दुनिया के देशों में भी परस्पर संबंधों में अविश्वास बढ़ रहा है। व्यक्ति से समाज तक तथा गॉव से विश्व व्यवस्था तक लगातार हिंसा का वातावरण बढ़ता ही जा रहा है।

ग्लोबल वार्मिंग का जो अर्थ पर्यावरणीय ताप वृद्धि के नाम से प्रचारित है उस ताप वृद्धि से भी यह मानव स्वभाव ताप वृद्धि विनाशकारी है क्योंकि इस ताप वृद्धि

का प्रभाव परिवार से विश्व तक स्पष्ट और तत्काल दिख रहा है जबकि पर्यावरण ताप वृद्धि का प्रभाव दूरगामी और पर्यावरण के माध्यम से है । पर्यावरण ताप वृद्धि का प्रभाव व्यवस्थात्मक है। कुल मिलाकर ग्लोबल वार्मिक का मानव स्वभाव में परिवर्तन पर्यावरण ताप परिवर्तन की अपेक्षा अधिक चिन्ता का विषय है किन्तु दुर्भाग्य से इस विनाशकारी विश्वव्यापी समस्या पर चर्चा न के बराबर की जाती है और पर्यावरण ताप वृद्धि के प्रभाव को बहुत अधिक बढ़ा–चढ़ाकर पेश किया जाता है।

मानव स्वभाव में इस विनाशकारी परिवर्तन का कारण न तो भौतिक ही हैं न प्राकृतिक। इसका कारण पूरी तरह समाज व्यवस्था में बदलाव है। समाज व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को न्याय और सुरक्षा की गारण्टी आवश्यक है। ज्यों–ज्यों यह गारण्टी कमजोर होती है त्यों –त्यों व्यक्ति के मन में व्यवस्था के प्रति विश्वास घटता जाता है और उसी अनुसार उसे आत्मनिर्भरता की आवश्यकता महसूस होने लगती है। यह आवश्यकता ही मानव स्वभाव परिवर्तन का कारण बनती है। यदि व्यक्ति को न्याय और सुरक्षा की निश्चित गारण्टी मिल जावे तो उसे ऐसी आवश्यकता महसूस ही नहीं होगी और तब उसके स्वभाव में परिवर्तन भी नहीं होगा।

समाज में कुछ वर्ग ऐसे स्वभाव परिवर्तन का लाभ उठा कर आगे बढ़ना शुरू कर देते हैं और व्यवस्था उन्हें नहीं रोकती या नहीं रोक पाती तब शेष समाज की भी मजबूरी हो जाती है कि वह स्वभाव परिवर्तन करें। धर्म जब अपने अनुयायियों को गुणात्मक परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करता है तब तक कोई कठिनाई नहीं आती। किन्तु धर्म जब संख्या विस्तार हेतु प्रतिस्पर्धी शुरू कर देता है तब यह खतरा खड़ा हो जाता है। इस्लाम ने इस दिशा में सबसे अधिक चालाकी दिखलाई। उसने इस चालाकी के आधार पर संख्या विस्तार में बहुत सफलता भी पाई। किन्तु इस चालाकी के ही दुष्परिणाम स्वरूप सर्वाधिक स्वभाव ताप वृद्धि मुसलमानों में ही दिख रही है। दुनिया में धर्म के नाम पर मारने वाले भी सबसे अधिक मुसलमान आतंकवादी ही दिख रहे है तथा मरने वाले आतंकवादी भी उनमें ही हैं। ईसाइयों में ऐसी संख्या बहुत कम है और हिन्दुओं में तो यदि संघ परिवार और सिखों को छोड़कर देखें तो ऐसी संख्या नगण्य ही मिलेगी।

धर्म के बाद ताप वृद्धि का दूसरा आधार माना जाता है राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धी। यदि यह स्पर्धा जनमत जागरण तक सीमित रहती है तब तो कोई दिक्कत नहीं थी किन्तु जब राजनीति पूरी तरह व्यवसाय के रूप में बदल गयी तब इसमें दिक्कत आने लगी। साम्यवाद ने तो बाकायदा वर्ग संघर्ष का नारा ही घोषित कर दिया। इस नारे का ही परिणाम हुआ कि मानव स्वभाव ताप वृद्धि का सर्वाधिक प्रभाव साम्यवाद पर ही है। साम्यवाद का ही अतिवादी स्वरूप नक्सलवाद के रूप में उभरा है। भाजपा पर ऐसा प्रभाव कम है और कांग्रेस में तो बिल्कुल ही नगण्य है। जे.डी.यू. को छोड़कर अन्य दल तो व्यक्तिगत गिरोह तक ही सीमित हैं इसलिए उनकी चर्चा ही व्यर्थ है।

दुनिया के अनेक देश दूसरे देशों पर कब्जा करने के प्रयत्नों में लगातार बढ़ रहे हैं। साम्यवादी देश और पूंजीवादी देश जब दो गुटों के रूप में प्रतिस्पर्धारत थे तब तक इस्लामिक देश संतुलन बनाकर रखते थे। किन्तु साम्यवाद

के पतन के बाद पूंजीवादी देशों के मनोबल में बहुत वृद्धि हुई। आज स्थिति यह है कि इस ताप वृद्धि का सर्वाधिक धमकी का व्यवहार करने लगे है और इस परिणाम स्वरूप ही अमेरिका जैसे देशों के स्वभाव में लगातार परिवर्तन आता जा रहा है। फिर भी हम इस्तामिक देश, साम्यवादी देश, पूंजीवादी अमेरिका और भारतीय स्वभाव की तुलना करें तो यदि इस्लामिक या साम्यवादी देश अमेरिका के समान एक ध्रुवीय शक्ति सम्पन्न हो गये होते तो दूनियॉ के देश आज की अपेक्षा कई गुना अधिक भयभीत दिखते। भारतीय स्वभाव तो तुलना में शामिल ही नही है।

यदि हम स्वतंत्रता के बाद के भारत के आन्तरिक मानव स्वभाव ताप वृद्धि के कारणों पर विचार करें तो हमें गांधी के विचारों के प्रभाव की चर्चा अवश्य ही करनी होगी क्योंकि स्वतंत्र भारत के मानव स्वभाव पर गांधी का प्रभाव सबसे अधिक अपेक्षित था। सैद्धांतिक रूप से यदि राज्य व्यवस्था अपराध नियंत्रण में आवश्यकता से कम बल प्रयोग करती है तो उसका विपरीत प्रभाव न्याय और सुरक्षा पर अवश्यंभावी है और इसके परिणाम स्वरूप समाज के सामाजिक वातावरण में हिंसा बढ़ती जाती है। गांधी जी ने राज्य व्यवस्था को संतुलित बल प्रयोग के स्थान पर न्यूनतम बल प्रयोग का आदर्श दिया इसका परिणाम विपरीत हुआ अर्थात् राज्य व्यवस्था कमजोर हुई और समाज में हिंसा बढ़ी। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद गांधी बहुत कम समय तक रहे लेकिन गांधीवादियों ने गांधी के विचारों को बिना परीक्षण के ही ऐसा प्रचारित किया कि वह विचार भारत के लिए स्वयं में एक नासूर बन गया। गाधी आगे क्या कहते यह बात स्पष्ट हो ही नहीं पाई और समाज के लिए अहिंसा के गांधी जी के विचारों को राज्य पर भी थोपने की लगातार कोशिश हुई। भारत में समाज में बढ़ती हिंसा का सर्वाधिक दोष गांधी जी के राज्य के लिए न्यूनतम हिंसा की सलाह को दिया जा सकता है जिससे देश आज तक उबर नहीं पाया है। आज भी समाज में हिंसा के पक्षधर अहिंसा के पक्षधरों की अपेक्षा अधिक मजबूत स्थिति में इसलिए हो रहे हैं क्योंकि समाज की अहिंसा और राज्य की अहिंसा को जोड़कर प्रचारित करने की भूल लगातार दुहराई जा रही है। राम और कृष्ण से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति संतुलित बल प्रयोग की पक्षधर रही है। हमारी राज्य को न्यूनतम बल प्रयोग की शिक्षा ने उसे बदलने का प्रयास किया। आज भी गुजरात जैसे प्रदेश में भी आमूल परिवर्तन दिख रहा है किन्तु गांधीवादी अपनी आंख और काम बंद करके वही राग अलाप रहे हैं। सम्पूर्ण भारत का मानव स्वभाव गांधी की सोच के विपरीत लगातर हिंसा की ओर बढ़ रहा है किन्तु हम उस पर मौलिक विचार के लिए तैयार ही नहीं है।

मुझे आश्चर्य होता है कि दुनिया के पर्यावरण्यीय ताप वृद्धि के लिए दुनिया भर के देश ''बाली'' में बैठकर समाधान खोजने में लगे रहे और इस पर लगातार चिन्ता तथा चिन्तन जारी है किन्तु दुनिया का कोई देश दुनिया के मानव स्वभाव में बढ़ती हिंसा के प्रति एक बार भी बैठकर चिन्तन या चिन्ता करने के लिए तैयार नहीं। यदि और कोई देख पहल न भी करे तो भारत को यह पहल करनी ही चाहिए थी क्योंकि भारत के लिए तो अहिंसा गांधी को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनी हुई हैं सम्पूर्ण भारत में हिंसा के प्रति बढ़ता आकर्षण का प्रश्न आज की सबसे अधिक घातक

समस्या है किन्तु हम इस समस्या की गंभीरता को समझने में भूल करके अन्य अनेक कम महत्व की समस्याएं सुलझाने में व्यस्त हैं। इस समस्या को सुलझाने की अपेक्षा उलझाया अधिक जा रहा है। समाज में हिंसा के पक्ष में इस्लामिक, संघवादी साम्यवादी विचार फैलाया जा रहा है जबकि समाज में अहिंसा के पक्ष में गांधीवादी विचारों को प्रोत्साहित करने की आवश्कता है। दूसरी ओर राज्य व्यवस्था में संतुलित हिंसा के पक्ष में साम्यवादी संघ परिवार वादी, इस्लामिक सोच को विकसित करना चाहिए था किन्तु हम राज्य व्यवस्था में गांधीवादी न्यूनतम हिंसा के सोच को विकसित कर रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि वर्तमान में गांधी के नाम पर प्रचारित नीतियों में कितनी गांधी की वास्तविक सोच है और कितनी गांधीवादियों द्वारा गांधी की सोच को तोड़–मरोड़कर अपनी सुविधा की संस्कृति। किन्तु जो कुछ अभी गांधी के नाम पर प्रचलित है उसी के मानव स्वभाव में बढ़ती हिंसक प्रवृत्ति पर गंभीर विचार–मंथन किया जाये और गाधी के अहिंसा के विचार को मजबूत करने के लिए गाधी मार्ग में संशोधन भी आवश्यक हो तो किया जाना चाहिए।

(ख) महात्मा गांधी और डा0 भीमराव अम्बेडकर

किसी भी समीक्षक के लिए दो महापुरूषों की तुलना करना बहुत कठिन काम होता है, क्योंकि उससे पेशेवर लोगों की भावनाओं के उबाल का खतरा रहता है किन्तु समाज में सत्य की खोज के लिए ऐसा खतरा उठाना भी पड़ता है और उठाना भी चाहिए। गॉधी और अम्बेडकर की तटस्थ समीक्षा एक ऐसा ही संवेदनशील विषय है। क्योंकि दोनों ही महापुरूष हैं, दोनों की समकालीन हैं, दोनों का ही समाज व्यवस्था पर व्यापक प्रभाव है और दोनों पर ही कुछ निहित तत्व अपना–अपना एकाधिकार घोषित हैं।

यद्यपि गांधी साहित्य और अम्बेडकर साहित्य को ठीक से पढा़ जाये तो स्पष्ट होता है कि गांधी वर्ग समन्वय के लिए प्रयत्नशील थें और अम्बेडकर वर्ग संघर्ष की दिशा में। किसी समान घटना का विवरण गांधी साहित्य में सवर्णो के मन में करूणा का भाव उत्पन्न करता था, किन्तु अम्बेडकर साहित्य में आकोश का। गांधी जी वर्ग समन्वय के लिए ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को भी मजबूत करने के पक्षधर थे और श्रम को रोजगार के साथ जोड़ने के भी। उनका मानना था कि श्रमजीवी तथा ग्रामीण वर्ग में अधिकांश अवर्ण तथा आदिवासी वर्ग का समावेश है। अम्बेडकर जी इस नीति के विरूद्ध थे। वे सम्पूर्ण आदिवासी हरिजन वर्ग की सामूहिक उन्नति के स्थान पर प्रतीक स्वरूप कुछ आदिवासियों हरिजनों की सवर्णो के समकक्ष प्रति को ही सम्पूर्ण वर्ग की प्रति मानते थे। इसको और स्पष्ट करें तो यदि उस मय सवर्णो और हरिजन आदिवासियों के बीच पंचान्नवे और पांच की प्रगति का फर्क था तो गांधी जी इस फर्क को दस और नब्बे की दिशा में इस तरह ले जाना चाहते थे कि सम्पूर्ण वर्ग की प्रगति को आधार माना जावे। अम्बेडकर जी हरिजन आदिवासी वर्ग के एक दो प्रतिशत व्यक्तियों की प्रगति को सौ तक पहुंच जाने को ही दूरी कम होना मानते थे भले ही शेष हरिजन आदिवासी दस के नीचे ही क्यों न रह जावें। गांधी हार गये और अम्बेडकर जीत गये। आदिवासी हरिजनों का दस प्रतिशत तो सवर्णो के समकक्ष

आ गया और नब्बे प्रतिशत आज भी पेट भरने के लिए सरकारी सस्ते अनाज के लिए मुंह देख रहा है।

गांधी जी आचरण को संगठन के नियमों से अधिक महत्वपूर्ण मानते थें जबकि अम्बेडकर संगठन के नियमों की अधिक समीक्षा करते थे। गांधी जी को हिन्दू धर्म में रहते हुए भी स्वयं को उन बुराईयों से ऊपर उठाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। यहॉ तक कि गांधी जी को हिन्दू धर्म की कमजोरियॉ दूर करने के प्रयत्नों में भी कोई बाधा नहीं दिखाई दी। दूसरी ओर अम्बेडकर जी के समक्ष हिन्दू धर्म बहुत बाधक दिख रहा था और तब उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार करके अपना संगठन बदल लिया। अम्बेडकर जी के विचार में धर्म संगठन से अधिक कुछ नहीं था। गांधी जी हिन्दू धर्म की मूल विशेषता को गर्व का विषय मानते थे और हिन्दू धर्म की सांगठनिक बुराईयों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। अम्बेडकर जी हिन्दू धर्म के सांगठनिक बुराईयों को शर्म का विषय मानते रहे, मूल तत्वों पर गर्व करने का तो कभी अवसर ही नहीं आया। आज भी स्पष्ट दिखाई देता है कि हिन्दू धर्म में अपने आन्तरिक मामलों में अनेक अन्यायकारी बुराईयां होते हुए भी अन्य धर्मो के मामले में उनका व्यवहार पर्याप्त सहनशील है जबकी दूसरे धर्म के लोग हिन्दू धर्म को निगलने के लिए अपनी सारी सीमाऍं तोड़ रहे हैं। कहा नहीं जा सकता कि हिन्दू धर्म अपनी इस विशेषता के कारण गांधी की नजर से गर्व करने योग्य है या अपनी अन्य बुराईयों के आधार पर अम्बेडकर की नजर से शर्म करने योग्य।

गांधी जी अपने प्रारम्भिक जीवन से ही भोग से त्याग की ओर बढ़ रहे थे और अम्बेडकर जी त्याग से भोग की ओर। गांधी सूट–बूट पहनकर इंग्लैण्ड गये और लौटा हुआ जीवन लंगोटी पहनकर जिए। अम्बेडकर जी ने अपना जीवन लंगोटी से शुरू किया और जब इंग्लैण्ड से लौटे तब पूरा रहन–सहन सूटबूट में बदल चुका था। गांधी जी ने कभी सत्ता के प्रति मोह
नहीं किया। कभी भी प्रधानमंत्री पद या राष्ट्रपति पद की किसी दौड़ से दूर नही हुए। यहॉ तक कि जब उन्हें भारत का कानून मंत्री बनाया गया तब भी वे और अधिक मंत्रालय लेने के लिए प्रयत्नशील बने रहे। यहॉ तक कि प्रधानमंत्री पद भी अंगूर खट्टे समझ कर छोड़ना उनकी मजबूरी थी। यही कारण था कि वे जब तक मंत्रिमण्डल में रहे तब तक लगातार असंतुष्ट भी रहे और अस्थिर भी।

गांधी जी हिन्दू धर्म की बुराईयों की चर्चा बुराइयॉ दूर करके धर्म को समृद्ध करने के लिए करते थे। गॉधी जी मानते थे कि सभी धर्मो को अपनी–अपनी बुराईयां दूर करनी चाहिए। अम्बेडकर जी हिन्दू धर्म की बुराईयों की चर्चा प्रतिकिया स्वरूप करते थे। हिन्दू कोड बिल के कुछ विशेष प्रावधान इसके उदाहरण हैं। इस कोड बिल के अनुसार कोई हिन्दू महिला किसी विवाहित हिन्दी पुरूष से स्वेच्छा से या मजबूरीवश भी विवाह नहीं कर सकती जबकि वही हिन्दू महिला किसी मुसलमान विवाहित पुरूष से विवाह कर सकती है। पता नहीं हिन्दू धर्म सुधार का प्रेम उमड़ रहा था या प्रतिकिया। पता नहीं आज तक भी हम हिन्दू कोड बिल को मानव कोड़ बिल में बदलकर ऐसे कलंक को क्यों नहीं धों रहे। मैं अब भी समझता हूॅ कि गांधी जी

मुसलमानों को उनकी वैसी ही स्थिति में छोड़कर सिर्फ हिन्दूओं तक की चिन्ता तक सीमित नहीं रहे होते।

आज गांधी की एक स्पष्ट पहचान बन रही है कि हर कट्टरपंथी गॉधी पर ही निशाना साध रहा है। मुस्लिम कट्टरपंथी लगातार गांधी का विरोध करते रहे। संघ परिवार की गांधी के प्रति धारणा भी जगजाहिर ही है। अम्बेडकर वादी कट्टरपंथी समूह के निशाने पर भी गांधी लगातार आ रहे हैं । अपने जीवनकाल में गांधी और अम्बेडकर जी के आपसी संबंध बहुत अच्छे और प्रेम पूर्ण थे किन्तु पता नहीं क्यों अब सभी कट्टरपंथी गांधी के विरूद्ध एकजूट हो रहे हैं दूसरी ओर इन सब कट्टरपंथियों के मन में अम्बेडकर जी के प्रति विशेष प्रेम उमड़ रहा है। वैसे तो सच भी है कि यदि अम्बेडकर जी का फार्मूला नहीं होता तो जो एक–दो प्रतिशत अवर्णो के भाग्य की लाट्री खुल सकी है और जो अवर्ण सवर्णो के लूट के माल के बंटवारे में शामिल हो सके हैं वे भी वंचित ही रह जाते। ऐसे लाभ प्राप्त लोगों को ऐसे महापुरूष के प्रति कृतज्ञता अवश्य प्रकट करनी चाहिए। मुसलमान भी अम्बेडकरवादियों को अपना स्वाभाविक मित्र मानते ही रहे हैं किन्तु अब तो भाजपा और संघ परिवार भी इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील है। गांधी विचार सबके सामूहिक निशाने पर है। मनुवादियों ने भी अब मान लिया है कि यदि सत्ता सुख भोगना है तो मिल–जुलकर ही भेजा जा सकता है, लड़–भिड़कर नहीं। यदि ग्रामीण गरीब श्रमजीवी उत्पादक वर्ग को लम्बे समय तक गुलाम बनाकर रखना है तो धर्म जाति के झगड़े भूलकर सभी शहरी पूंजीपति बुद्धिजीवी उपभोक्ता वर्ग को इकट्ठा होना ही पड़ेगा और इसका सबसे अच्छा आधार है गांधी के विचारों की लगातार आलोचना करना। यदि इसके लिए मजबूरी ही हो तो अम्बेडकर जी को भी ऊपर उठाया जा सकता है। क्योंकि गांधी राजनैतिक, आर्थिक, बौद्धिक सत्ता के अकेन्द्रीयकरण या विकेन्द्रीयकरण के प्रतीक हैं और अम्बेडकर जी केन्द्रीयकरण के। गांधी विचार सत्ता के खेल में बाधक हैं तो अम्बेडकर जी का तो नाम ही पर्याप्त है। सत्ता का एकपक्षीय आनन्द उठा रहे मनुवादियों ने भी समझ लिया है कि अम्बेडकर जी के नाम पर जो अवर्ण अब तक सत्ता के खेल में शामिल हो चुके है उनको स्वीकार करने में ही भलाई है। इसलिए ग्रामीण गरीब श्रमजीवी उत्पादक के प्रतीक गांधी विचार को किसी न किसी तरह दूर रखने का प्रयत्न करना ही होगा। कांग्रेस पार्टी अब तक गांधी की प्रशंसा के नाम पर यही काम सफलता पूर्वक करती रही है और विपक्ष गांधी विरोध के नाम पर।

सारी समीक्षा बाद भी मैं मानता हूँ कि गांधी और अम्बेडकर आज की सिद्धांत हीन राजनीति से बहुत ऊपर थे। न तो गांधी वैसे थे जैसा आज के गॉधीवादी प्रचारित करते हैं न ही अम्बेडकर ही वैसे थे जैसा उनके भक्तों का आचरण है। कहीं न कहीं अपने –अपने स्वार्थ के लिए दोनों के नामों का उपयोग हो रहा है। दोनों ही गुट अपने – अपने स्वार्थो के लिए इन महापुरूषों के नामों का उपयोग कर रहे हैं और बेचारा ग्रामीण श्रमजीवी गरीब
उत्पादक इन महापुरूषों के नामों से आज तक छला जा रहा है और भविष्य में भी छला जाता रहेगा।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न (ग) . आपके विषय में यह आम धारणा है कि आप झूठ नहीं बोलते। हमारे मन में यह जानने की इच्छा है कि वर्तमान सामाजिक वातावरण में भी सिर्फ सच बोलने से आपको कठिनाई क्यों नही होती।

उत्तर – यह बात असत्य है कि मैं सच ही बोलता हूँ। सच्चाई यह है कि मैं राजनैतिक प्रशासनिक सन्दर्भो को छोड़कर अन्य सभी मामालों में अधिकतम सच बोलने का प्रयास करता हूँ। राजनैतिक प्रशासनिक मामलों में असत्य बोलने की मजबूरी को मैं अपने आचरण की समीक्षा से अलग रखता हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक या अन्य दैनिक किया–कलापों में मैं झूठ से बचने का पूरा–पूरा प्रयास करता हूँ। मुझे लगता है कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है किन्तु मैं इस संबंध में बहुत सतर्क रहता हूँ। कार्य बहुत कठिन होते हुए भी मेरी सतर्कता में निम्न बिन्दू सहायक होते हैं ।

(1) मैं बहुत कम बोलता हूँ। कई लोगों के बीच चल रही चर्चाओं में भी सुनता अधिक हूँ और बोलता कम हूँ।

(2) किसी भी मामले में बोलने के पूर्व मैं पूरी बात को समझता हूँ तब बोलता हूँ बिना ठीक से सुने या बिना समझे उत्तर नहीं देता।

(3) मैं झूठ से बचने के लिए सच को भी छिपा जाता हूँ। अर्थात् जब तक आवश्यक न हो तब तक सच भी नहीं बोलता। प्रायः ऐसी स्थितियॉ आती रहती है जब सच कहना नुकसान दायक होता हैं। ऐसी स्थिति में प्रायः मेरा उत्तर यही होता है कि ऐसे प्रश्न आपको नहीं करने चाहिए। या यह बात जानने का आपका उद्धेश्य क्या है? या ऐसा ही कोई और उत्तर देकर '' झुठ बोलना नहीं , सच बताना नहीं '' की लीक पकड़ता हूँ।

(4) मैं दूसरों की गुप्त बातें जानने का भी प्रयत्न तब तक नहीं करता जब तक अति आवश्यक न हो। यहॉ तक कि यदि ऐसी अनावश्यक गोपनीय चर्चा कहीं चलती है तो मैं उस चर्चा से बचता हूँ।

(5) मैं अपनी आदत सुधारने के लिए छोटी–छोटी बातों में भी झूठ से बचता हूँ। जैसे किसी मित्र के कार्यकम में न जाने के लिए बीमारी का बहाना बनाना, यदि किसी से फोन पर बात नहीं करनी है तो यह कहवा देना कि वे बाहर गये हैं, बिना भोजन किये ही कह देना कि भोजन कर लिया हूँ, किसी मीटिंग में बहुत कम लोग आये हों तब भी उत्साहित करने के लिए अच्छी भीड़ बताना आदि। मैं ऐसे अवसरों पर भी भरसक प्रयत्न करता हूँ कि झूठ न बोलना पड़े और यदि बोलना भी पड़े तो बाद में सोचता हूँ कि ऐसे अवसर पर झूठ से बचने का और क्या तरीका संभव था। यदि और कोई तरीका नहीं था तो उक्त झुठ के लिए कोई पश्चाताप भी नहीं करता।

प्रश्न 2 पंजाब केसरी दिनांक सोलह जनवरी के एक लेख में विद्धान लेखक ने लिखा है कि –

(1) हमें भय ने जकड़ लिया है और हमने कठोरतम कानूनों और मानवाधिकारों के उल्लंधन को सहन करने की आदत डाल ली है। सच्चाई यह है कि सुरक्षा की चिन्ताओं पर ध्यान केन्द्रित हो जाने से दमन का उदभव होता है।
(2) आज भारत के अनेक प्रदेशों में पोटा या उससे भी अधिक कठोर तथा बर्बर कानून मौजूद है किन्तु हम या तो ऐसे कानूनों का समर्थन करने लगते हैं या चुप रहते हैं जबकि इनका विरोध होना चाहिए था।
(3) दिल्ली के उप राज्यपाल ने पहचान पत्र का तुगलकी आदेश दिया। इस आदेश के द्वारा आम नागरिकों को कितनी कठिनाई होती इसकी कल्पना ही नहीं की गठ। यद्यपि भारी विरोध को देखते हुए यह आदेश वापस हो गया किन्तु इससे हमारी सरकारों की सोच तो पता लग ही जाती है।
(4) जहॉ तक बुनियादी अधिकारों का प्रश्न है तो नक्सलवादी इससे सर्वाधिक त्रस्त हैं। छत्तीसगढ़ के पी0यू0सी0एल0 कार्यकर्ता विनायक सेन की जमानत अर्जी अब तक बाइस बार खारिज हो चुकी है जबकि सुप्रीम कोर्ट के अनुसार भी जमानत हर अभियुक्त का अधिकार है वैसे भी विनायक सेन अब तक तो अपराधी सिद्ध नहीं हुए हैं, फिर भी उनकी जमानत में लगातार रोड़े अटकाए जा रहे हैं।

मुझे लगता है कि उक्त लेखक के विचारों से आपके विचार भिन्न हैं, चूँकि उक्त लेखक भी एक सम्मानित विचारक है इसलिए उनका नाम न लिखते हुए मैं आपकी प्रतिकिया जानना चाहता हूँ।

उत्तर – समाज में दो प्रकार की समस्याएँ होती हैं(1)वे जो व्यक्ति की अपनी गल्तियों से समाज में बढ़ती है(2) वे जो दूसरों द्वारा किये गये अत्याचार अनाचार या अपराधों से बढ़ती हैं। समाज में जब दूसरे प्रकार की समस्याएँ नियंत्रित हों तो पहले प्रकार की समस्याओं को दूर करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु जब दूसरे प्रकार की समस्याएँ अनियंत्रित हो जावें तब पहले प्रकार की चिन्ता से अधिक दूसरे प्रकार की समस्याओं पर ध्यान लगाना पड़ता है। ऐसे समय में राज्य शक्ति को भी मजबूत करना पड़ता हैं क्योंकि राज्य शक्ति को मजबूत करके ही अपराधियों पर अंकुश हो सकता है। राज्य शक्ति के ऐसे मजबूतीकरण से अपराधियों को कष्ट होता है किन्तु वे स्वयं सामने न आकर नासमझ मानवता वादियों को आगे कर देते हैं। इन नासमझों की एक खास पहचान होती है कि जब पहले प्रकार की गलती करने वालों के खिलाफ राज्य कठोर कानून बनाता है तब ये नासमझ लोग प्रसन्नता व्यक्त करते हैं और जब दूसरे प्रकार के अपराधियों के विरूद्ध सरकार कठोर होती है तब ये नासमझ विरोध व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत लेख के लेखक का हर वाक्य दूसरे प्रकार के लोगों के विरूद्ध राज्य को मजबुत करने के खिलाफ है और उनकी भाषा से मूझे लगता है कि शराब बंदी, दहेज नियंत्रण ,बारबाला कानून, गुटका रोकथाम , बालविवाह नियंत्रण जैसे पहले प्रकार के कानून बनवाने में राज्य कठार होता है तब ये राज्य की कठोरता के पक्ष में आवाज उठाते हैं। उनमें से अनेक लोग तो अपराधियों से जुड़े भी होते हैं किन्तु अधिकांश नासमझी में ऐसा करते रहते हैं। आपने उन्हें विद्वान लेखक कहा है किन्तु मुझे तो आपकी भी विद्वता पर सन्देह है। विचार करिये कि सम्पूर्ण भारत में अपराध बढ़ रहे हैं। कानून व्यवस्था कमजोर हो

रही है। हिंसा का वातावरण बढ़ता जा रहा है। किन्तु उक्त लेखक राज्य शक्ति के संभावित दुरूपयोग से तो बहुत चिन्तित दिख रहे हैं किन्तु अपराधियों और कानून तोड़ने वालों के संभावित अत्याचारों की उन्हें चिन्ता नहीं। जिन विनायक सेन की लेखक ने चर्चा की है उन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने भी रिहा करने से मना कर दिया है। यदि मेरा कोई मित्र किसी घोषित अपराधी से जेल में मुलाकात करने के बहाने किसी दूसरे अपराधी का गुप्त पत्र सल्लाई करने में पकड़ा जाता है तो मेरी तो शर्म से गर्दन झुक जाती। किन्तु हमारे मानवता प्रेमियों की गर्दन ही ऐसी है कि वह कभी झुक ही नहीं सकती। मैं लेखक के इस कथन के विरूद्ध हूँ कि सुरक्षा की चिन्ताओं से घिरे रहने से दमन का उद्‌भव होता है। इसी तरह मैं तो पूरी तरह इस मत का हूँ कि अपराधों की रोकथाम के लिए कठोरतम प्रयत्न होने चाहिए और यदि पोटा भी पर्याप्त न हो तो उससे भी कठोर कानून बनाना चाहिए। आज भारत में कुछ अपराधियों के एजेन्ट अथवा नासमझ लोग विरोध भी करें तो उससे चिन्तित होना ठीक नहीं है। पहचान पत्र के द्वारा होने वाली कठिनाइयों का जिक किया गया। मैं भी कठिनाईयों से सहमत हूँ। किन्तु लेखक महोदय ने कोई और फार्मूला नहीं सुझाया जो ऐसे आतंकवादियों की रोकथाम में सहायक हो। यदि कोई और विकल्प न हो तो पहचान पत्र जारी करना उचित कदम है। मेरा तो सुझाव है कि भारत के प्रत्येक नागरिक या परिवार को एक निश्चित कोड नंबर दे दिया जाए जो बताना आवश्यक हो और संदेह होने पर पुलिस उसकी **verify** कर सके। जब अपराध बढ़ने लगे तब कुछ कदम उठने ही चाहिए।

लेखक महोदय ने जितने प्रश्न उठाये हैं उनमें से किसी एक का भी विकल्प या समाधान भी बताया होता तो मुझे बहुत खुशी होती। पता नहीं किस नासमझ का आपने संदर्भ दिया है जो सर्वोच्च न्यायालय के नाम पर असत्य लिखता है कि जमानत प्राप्त करना हर अपराधी का अधिकार है। आप मेरी ओर से उनसे पता करिए। मेरे विचार में जमानत मांगना तो अपराधी का अधिकार है किन्तु प्राप्त करना उसका अधिकार नहीं है। यदि सर्वोच्च न्यायालय तक जमानत अस्वीकार कर दे तो अपराधी के किसी अधिकार का हनन नहीं होता। सच्चाई यह है कि समाज में एक ऐसा गुट हमारे साथ घुला–मिला है जो लगातार हिंसक प्रवृत्ति की चिन्ता करता रहता है। जब अपराधी हिंसा करते हैं तब तो यह गुट चुपचाप रहता है, किन्तु जब राज्य आकमण करता है तब यह गुट अहिंसा और गांधी की माला जपना शुरू कर देता है। आपने जिन लेखक की चर्चा की है वे नक्सलवादियों के आकमण, हिंसा, अत्याचारों के समय चुप रहते होंगे किन्तु जब राज्य आकमण करता है तब उनकी आवाज सकिय हो जाती है। ऐसे लेखकों के विषय में सतर्कता की जरूरत है।

पत्रोत्तर

(घ) श्री सत्यदेव गुप्त सत्य, नयागंज, रूदौली, फैजाबाद , यू0पी0

प्रश्न – ज्ञानतत्व के 144 वें अंक में श्री मोहम्मद शफी आजाद साहब का पत्र पढ़ा 145 वें अंक में आपने उनके विचारों को एक ईमानदार कोशिश के रूप में स्वीकार किया है, उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। उक्त पत्र पर मैं भी अपनी कुछ प्रतिकियाएँ आप तक पहुँचाना उचित समझता हूँ।

सर्वप्रथम गांधी – यह सत्य है कि ''गांधी'' सदैव विवादित रहे हैं, 144 वें अंक में आपने गांधी नाम से जुड़े दो वर्गो को जिक किया है परन्तु तीसरे वर्ग की चर्चा नहीं की है। ऐसे ही साम्प्रदायिक गांधी के लिए दो पत्रों के स्थान पर मात्र श्री मो0 शफी आजाद साहब के पत्र का नाम आया है।

गांधी मानवता की आंधी/हमने देखा अर्थ से इति तक, गॉधी की काया थी जब तक/मत वैभिन्न रहा बहु तब तक अब तो इस विचार है गांधी।

बापू का कुछ न कुछ तो सब लोग सदा कहिहैं।
लेकिन जवाब लइकै बापू तौ अब न अइहै।।
गांधी न व्यक्ति रहिगे, उइतौ विचार बनिगे
कथनी संग करनी से अंग–अंग सनिगे
कुछ उनका गुनगुनइहैं कुछ उनपै भुनभुनइहैं।।

गांधी के तीन बदर, देखैं सुनैं न बौलैं– बकरिउकै दूध दुहिगा, चिकवनकै झुण्ड डोलैं दुई खण्ड किहिन पहिले अब बांटि–बांटि खइहैं।।

गांधी जी ने कहा था – कि पाकिस्तान मेरी लाश पर ही बनना संभव है मेरे जीते जी पाकिस्तान कभी नहीं बन सकता।..... गॉधी जी का केवल एक यही बयान हिन्दुओं और हिन्दोस्तान के साथ किया गया बहुत बड़ा छल था। हिन्दू महासभा को निष्क्रिय करने में गांधी जी का बड़ा योगदान रहा। हिन्दू समाज सदैव विश्वास में ही मारा गया है, भावनाओं में बहक जाने वाले हिन्दू समाज ने तो गांधी जी को अवतार तक कह कर महिमा मण्डित किया था, जिसकी सजा भारत तथा हिन्दू समाज को अब तक मिल रही है। आपने गोडसे के बाइस बयान छापकर कहा है कि ''उसमें एक भी तर्क ऐसा नहीं है जिससे गांधी हत्या का औचित्य सिद्ध हो ''।

मैं समझता हूँ कि आपने सत्य ही विचारा हैं तभी तो गोडसे के बाइस के बाईस बयान अल्पमत में आ गये हैं।

परन्तु लगता है कि स्व0इंदिरा जी 'गोडसे की विचारधारा की थीं तभी तो पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश बन गया, पंजाब में भिंडरावाला मार डाला गया और खालिस्तान नहीं बन सका मेरे विचार से गांधी जी होते तो आमरण अनशन शुरू कर देते पर बांग्लादेश न बनने देते उधर संत भिण्डरावाला की रक्षा अवश्य करते भले ही भारत का एक और टुकड़ा हो जाता और खालिस्तान का जन्म हो जाता।

परन्तु चिंता की अधिक बात नहीं है, गांधी वादी विचारधारा जीवित है, संत मनमोहन सिंह जी ने कहा है कि ''भारत के सभी संसाधनों पर मुसलमानों का पहला अधिकर है, प्रसिद्ध समाजवादी पूर्व मुख्यमंत्री मुलायमसिह यादवजी ने लखनऊ के फिरंगी महल के मौलाना के चरणों में गिरकर प्रार्थना किया कि आपके हर आदेश का तो पालन हो रहा है। 'मऊ' में मुख्तार अंसारी द्वारा 'नोआखाली' कांड' का पुनर्मचन किया जा चुका है। कश्मीर को हिन्दुओं से मुक्त कराया जा चुका है, हिन्दी के स्थान पर उर्दू को स्थापित किया जा रहा है, भारत में शांति स्थापित करने के लिए थोड़ी सी रियायत तो देनी ही होगी।

जब हम इन संदर्भो को लेकर मो0शफी साहब के विचारों को पढ़ते हैं तो इस्लाम की वही पुरानी मान्यता स्पष्ट दिखाई पड़ती है अर्थात् इस्लाम और तलवार तो पर्यायवाची शब्द है जिनका अहिंसा, सत्य एवं सर्वजन हिताय से दूर का भी संबंध अक्षम्य है। शफी साहब ने स्पष्ट लिखा है कि '' हिन्दू मुस्लिम भाई–भाई या ईश्वर अल्ल तरे नाम का नारा दोनों वर्गो को धोखा देने वाला प्रतीत हुआ ''। उन्होंने आगे लिखा है कि देश विभाजन के बाद हिन्दुस्तान का मुस्लिम वर्ग गाधी जी का बराबर सम्मान करता है ''। यही तो इस्लाम की वास्तविक अवसरवादी तस्वीर है।।

बहुत संघर्ष किया है फिर भी हैं तो काफिर ही।'' विभाजन के तत्काल बाद घोर हिन्दू संस्कृति विरोधी 'इस्लाम' कुछ वर्षो के लिए समन्वयवादी भाईचारा पोषक बन गया, परन्तु तलवार न तब म्यान में गई थी न अब, न ही कभी म्यान में जायेगी। मो0 शफी साहब ने रामजन्म भूमि एवं रामसेतु जैसी समस्या पैदा करने के लिए प्रश्न किया है कि किस मजहब द्वारा ये समस्याएं पैदा की जा रही हैं जिसका स्पष्ट उत्तर है भारत विरोधी षडयंत्रकारियों द्वारा जो येनकेन प्रकारेण भारतीय गौरव, पुरातन संस्कृति के चिन्हों अवशेषों तक को शेष नहीं रहने देना चाहती हैं, और उन भारतीयों द्वारा मरने से पूर्व जिंदा रहने के लिए छटपटा रहे हैं।

वर्तमान समय में हम पाते हैं कि विश्व की दो संस्कृतियां पूर्ण आवेग में हैं एक है अरबी संस्कृति – जो अपनी आदिम प्रकृति अनुसार खून की होती खेलती जा रही है
हिंसा स्वाभाविक गुण है। दूसरी है भारतीय संस्कृति जिसकी सरहदें दिन प्रतिदिन कम होती जा रही हैं तथा –

सर्वे भन्तु सुखिनः के स्वर कमशः क्षीण होते जा रहे हैं।
शक्ति आसुरी अपनी संस्कृति का दम भरती है।
छल की मारी भारत माता पल–पल मरती है।
कहते हैं आतंक अनैतिक हिंसा हम जिसको
धर्म युद्ध उसको, उनकी सभ्यता समझती है।।

अन्त में महोदय, आपकी पत्रिका का उद्देश्य तो एक महान लक्ष्य ''भारत नव निर्माण'' को लेकर है। आप इन फुहड़ प्रसंगों में न पड़ें तो अच्छा होगा, मुझे भय है कि इन विवादों में पड़ कर आप कहीं अपने मार्ग में अवरोध आरोपित कर बैठें।
उत्तर – आपने एक साथ कई प्रश्न उठाये हैं जिनमें से दो का उत्तर पर्याप्त प्रतीत होता है। 1 गांधी के आश्वासन से देश छला गया 2 भारतीय संस्कृति की सरहदों का सिकुड़ना।

छल शब्द नीयत का प्रतीक है, नीतियों का नहीं। भारत का विभाजन गांधी की नीयत का खेट नहीं था, नीतियों की भूल हो सकती है। छल शब्द का उपयोग उचित प्रतीत नहीं होता। सच्चाई यह है कि गांधी के साथ छल किया गया। साम्प्रदायिक शक्तियॉ और राजनैतिक स्वार्थ जब एक साथ मिलकर परिस्थितियों पर हावी हो गये तब गांधी परास्त हो गये। यह पूरी तरह प्रमाणित है कि नब्बे प्रतिशत मुसलमान और बीस प्रतिशत हिन्दू धर्म निरपेक्षता की गांधी की नीतियों के विरूद्ध था। दूसरी ओर नेहरू पटेल एण्ड कंपनी भी राजनैतिक सत्ता की जल्दबाजी में

गाधी से छिपकर विभाजन के लिए सहमत हो गये। गांधी को झूकना पड़ा। आप ही निर्णय करिये कि छला कौन गया और छलने वाला कौन था? छलने के पीछे किसका स्वार्थ था? आज तक बहुत लोग कहते हैं कि गांधी को रोकने के लिए अनशन करना चाहिए था, प्राणों की बाजी लगा देनी चाहिए थी। मैं सर्वे करता हूॅ तो पाता हूॅ कि ऐसी सलाह देने वाले अधिकांश लोग स्वतंत्रता के पूर्व भी गांधी विरोधी रहे हैं और आज भी। यह निश्चित है कि गांधी विभाजन नहीं रोक पाते किन्तु विभाजन के विरूद्ध जान दे देने से गांधी छल शब्द के कलंक से बच सकते थे। साथ ही जो कार्य गोडसे को करना पड़ा उससे भी बचा जा सकता था और साथ ही कुछ लोग आज तक गांधी हत्या का कलंक ढो रहे हैं उससे भी उनकी बचत हो सकती थी। गांधी जी ने लाश पर पाकिस्तान न बनने की बात कही थी। यह तो पचास वर्ष पुरानी बात है। राम की सौगन्ध खाकर शपथ लेने वाले मंदिर न बनने के बाद भी जीवित धूम रहे हैं इस छल का स्पष्टीकरण किससे मांगा जाए। राम मंदिर के नाम पर सरकार बनाने के बाद भी जीवित घूम रहे लोग ही स्वयं पर प्रश्न करने के स्थान पर गांधी की नीयत पर प्रश्न करते हैं तब मुझको लगता है कि गांधी पर विभाजन के मामले में दोषारोपण अपनी सीमाएं तोड़ रहा हैं। गांधी ने नीतिगत मामलों में कई गल्तियॉ की हैं जिसका दुष्परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं और मैं उनकी उन नीतियों का मुखर आलोचक हूॅ किन्तु मैं इस बात से के विरूद्ध हूॅ कि गांधी का विरोध करने को अपने को अपना कार्यक्रम के अन्तर्गत गांधी के प्रति अत्याचार भी करने से परहेज न किया जाए।

मैं अनुभव करता हूॅ कि साम्प्रदायिक कट्टरवाद के मामले में मुसलमानों का प्रतिशत हिन्दुओं से कई गुना अधिक है किन्तु दो विपरीत धर्मावलम्बी होते हुए भी दोनों में गजब की समानता है। दोनों की गांधी को साम्प्रदायकि सिद्ध करते रहते हैं। साम्प्रदायिक तत्वों की खास पहचान होती है कि वे दूसरों के आचरण की चर्चा और समीक्षा तो खूब करते हैं किन्तु स्वयं के विषय में चुप रहते हैं। हमारे दोनों ही धर्मावलम्बियों में यह गुण समान रूप से मिलता है। ये दोनों ही गुट हिंसा के समर्थन में भी एक समान सोच रखते हैं। ये लोग व्यक्ति को व्यक्तिगत मामलों में भी निर्णय की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते। ये भिन्न–भिन्न रूप में होते हुए भी एक ही हैं जो अलग–अलग गुटों में बंटकर शान्ति प्रिय लोगों को उद्वेलित करते रहते हैं। हम आप सबका कर्तव्य है कि ऐसे प्रचार से सतर्क रहे।

आपने ''भारतीय संस्कृति की सरहदों'' शब्द लिखा। संस्कृति को भौगोलिक सीमाओं में बांधना अच्छी आदत नहीं है। भारतीय सीमाओं के भीतर के भी कुछ क्षेत्र भारतीय संस्कृति से भिन्न होना संभव है या हमारी भौगोलिक सीमा से बाहर भी भारतीय सस्कृति विस्तार कर सकती है। इसलिए राष्ट्र और संस्कृति बिल्कुल भिन्न विषय हैं। इन पर अलग–अलग विचार करना चाहिए।

श्री ईश्वर दयाल, नालंदा बिहार।

प्रश्न (च) आपने अपने विचारों के कम में ''यदि मैं तानाशाह होता'' शीर्षक से कुछ लिखा। आप जैसे विचारक को तानाशाही की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि तानाशाही की कल्पना भी घातक होती है।

आप पचास लोगों को फांसी देने की चर्चा की। क्या ऐसे तानाशाही से निरपराध दण्डित नहीं हो सकते है? न्यायालय भी तानाशाह के ही नियंत्रण में ही तो रहेगा।

उत्तर– ऐसा लगता है कि आपने मेरे कथन को ठीक से समझने का प्रयत्न नहीं किया। तानाशाह शब्द मेरी कल्पना है इच्छा नहीं। उसके बाद जो कुछ लिखा गया है वह मेरी इच्छा है, कल्पना नहीं। आपने इसे पलट दिया। आप पूरी तरह निश्चिंत रहें। मैं तानाशाही का न कभी समर्थक रहा हूँ न रहूँगा। मेरे मन में ऐसी कोई इच्छा नहीं है। किन्तु मैंने अपनी तानाशाही की कल्पना में जो छः बातें लिखी हैं वे मेरी इच्छा में शामिल हैं। मैं चाहता हूँ तानाशाही की कल्पना के आधार पर विवेचना न करके इच्छाओं पर विवेचना अधिक करें तो उसकी सार्थकता होगी।

आपने लिखा है कि न्याय, पुलिस और वित्त केन्द्र सरकार के विषय न होकर स्थानीय सूची में डाले जायें। मैं आपसे सहमत हूँ। प्रत्येक ईकाई को अपनी इकाईगत न्याय, पुलिस और वित्त व्यवस्था की स्वतंत्रता होगी। इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि उसके ऊपर न्याय, पुलिस और वित्त के लिए विश्व समाज का भी एक अंग है और रहेगा। उसे न्याय, सुरक्षा वित्त के लिए विश्व व्यवस्था तक की गारण्टी है। यह अलग बात है कि अब तक हम राष्ट्र से ऊपर नहीं जा सके हैं किन्तु लक्ष्य तो हमारा विश्व व्यवस्था तक का ही रहना चाहिए।

(छ) श्री राजीव भगवान, झांसी , उत्तर प्रदेश।

प्रश्न– मैं विकेन्द्रित व्यवस्था का पक्षधर हूँ। परिवार गॉव जिले को भी प्रदेश और केन्द्र के समान ही विधायी अधिकार मिलने चाहिए। मैं परिवार या गॉव तक को संसदीय स्वरूप में अधिकार कर्तव्य और दायित्व सम्पन्न देखना चाहता हूँ। इस संबंध में आपके क्या विचार हैं।

आपके विचारों से ऐसा लगता है कि आप गांधीवादी हैं। एक तरफ तो गांधी जी लोक स्वराज्य की बात करते थे दूसरी और जब स्वयं लोक स्वराज्य पर आचरण की नौबत आई तब निर्वाचित सुबाब बाबू को अपनी तानाशाही से हटवाकर दूसरा अध्यक्ष बनवा दिया। आपके विचार में गांधी का लोक स्वराज्य सुबाब बाबू के निर्वाचन के समय आचरण से भिन्न दिशा में कैसे चला गया? प्रधानमंत्री के चुनाव में भी गांधी जीने पटेल की जगह नेहरू का पक्ष लेकर लोक स्वराज्य भावना को ठेस पहुंचाई। आपकी राय में गांधी का यह कार्य लोक स्वराज्य भावना के कितना विपरीत रहा?

उत्तर – आप परिवार गाँव जिले को जिस तरह विधायी अधिकार सम्पन्न देखना चाहते हैं उससे मेरी पूरी–पूरी सहमति भी है और सहभागिता भी रहेगी । आप इस संबंध में मेरी जो भी सहायता चाहें वैसा मैं करने के लिए तैयार हूँ।

अधिकार तीन प्रकार के होते है (1)मौलिक अधिकार **fundamental right**(2)संवैधानिक अधिकार **Constitutional right** (3)सामाजिक अधिकार **Social right**। तीनों की संरचना भिन्न–भिन्न होती है और तीनों के उल्लंघन का स्वरूप भी अलग–अलग होता है। गांधी जी ने सुबाब बाबू की जीत के विरूद्ध अपने विचार व्यक्त करके किस अधिकार का अतिक्रमण किया यह समझना आवश्यक है।

मेरे विचार में तो गांधी जी ने कुछ भी गलत नहीं किया है। मैं आज तक नहीं समझ सका कि हमारे मापदण्ड दुहरे क्यों हो जाते हैं? एक तरफ तो हम गांधी के विरूद्ध गोडसे की गोली तक के समर्थन में तर्क खोजना शुरू कर देते हैं तो दूसरी ओर गॉधी द्वारा सुबाब बाबू के विरूद्ध अपना विचार व्यक्त करने को भी गलत मानने लगते हैं। गॉधी ने गरम दल की नीतियों के विरूद्ध कांग्रेस को सतर्क किया जिसे सबने गांधी की इच्छा समझकर मान भी लिया। इसमें मुझे तो कोई गल्ती नहीं दिखी। पटेल और नेहरू के बीच गांधी जी की कितनी संलिप्तता थी यह भिन्न विषय है। इस पर कभी और चर्चा हो सकती है। यदि इन दोनों की सोच की व्याख्या करें तो भिन्न–भिन्न मामलों में इनकी भिन्न–भिन्न सोच रही है। पटेल जी आवश्यकतानुसार गांधी जी की गलत बात का विरोध कर सकते थे किन्तु नेहरू जी नहीं। पटेल जी सीमित मताधिकार चाहते थे जबकि नेहरू जी सबको मताधिकार देने के पक्षधर थे। इसलिए अलग–अलग मुद्दों पर अलग–अलग समीक्षा करनी आवश्यक है।

अब तक सारी चर्चा के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूॅ कि गांधी जी के संबंध में हम अतिवादी प्रचार से प्रभावित हैं। एक तरफ तो वे लोग हैं जो कहते हैं कि गांधी गलत कर ही नहीं सकता, क्योंकि गांधी की नीयत भी पूरी तरह ठीक है और नीतियॉ भी। दूसरी ओर बड़ी संख्या में ऐसे भी लोग हैं जो पूरा जोर लगाकर सिद्ध करते हैं कि गांधी ने सिर्फ गलत ही किया है क्योंकि उनकी नीयत भी गलत रही है और नीतियां भी। मेरे विचार में दोनों ही अतिवादी हैं। वस्तुस्थिति यह है कि गांधी की नीयत पर जरा भी संदेह नहीं किया जा सकता और नीतियों में भूल होना स्वाभाविक है जिनकी समीक्षा होते रहनी उचित है। फिर भी मेरे विचार में भूलों के बावजूद गांधी जी की कार्यप्रणाली अन्य समकालीन महापुरूषों से अच्छी ही मानी जानी चाहिए।

(ज) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट 455 खारी बावली, दिल्ली–6
प्रश्न –6 ज्ञानतत्व एक सौ छियालीस में पृष्ठ ग्यारह बारह पर श्री गोपीरंजन साक्षी की शंकाओं में से दो ज्वलंत शंकाओं को आपने जाने–अनजाने नजरअंदाज कर दिया है।
(1) भारत में आर्यो के आगमन पश्चात दिन पर दिन मूलवासियों की दशा गिरती ही चली गयी। (2)अवतारों से भी दलितोद्धार नहीं हो सका उनकी दीन दशा को जनक मनुस्मृति रही जिसकी काली छाया से आज भारत की 65 प्रतिशत जनता आक्रान्त है।

उपरोक्त शंकाओं पर आपकी प्रतिकिया नितान्त अपेक्षित थी। वैसे विनम्रता –पूर्वक लेखक की जानकारी के लिए कहना चाहता हूॅ कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं कहीं बाहर से नहीं आये इसमें सन्देह के लिए कहीं कोई अवकाश नहीं है। मनुस्मृति में किसी वर्ग विशेष के लिए पक्षपात की कोई गुंजाइश नहीं है।

किसी विषय पर लिखने से पूर्व लेखक को उसका गंभीर अध्ययन करना चाहिए। लेखक की जानकारी के लिए बता रहा हूँ ''मनुस्मृति'' की वर्ण व्यवस्था विद्या(योग्यता) और कर्म से निर्धारित होती है न कि जन्म से। योग्यता को नजरअंदाज करना कभी संभव हो ही नहीं सकता।

उत्तर– आर्य बाहर से आये या यहीं के हैं तथा मनुस्मृति के संबंध में अपने उत्तर दे ही दिया है। मनुस्मृति में संशोधन की चर्चा न करके विरोध करने वालों की नीयत पर तब संदेह हो जाता है जब वही लोग साठ वर्षों के संविधान का विरोध पर करने आग बबूला हो जाते हैं। मनुस्मृति के आधार पर काम करने वाली समाज व्यवस्था की समीक्षा हजारों वर्ष बाद हो रही है। भारतीय संविधान की समीक्षा बनने के दो वर्ष बाद ही शुरू हो गई। जिस संविधान में साठ वर्षों में ही सैकड़ों संशोधन हो चुके हैं उसकी समीक्षा से आसमान सिर उठाने वाले लोगों का मनुस्मृति की कोई व्यवस्था आज आवश्यक नहीं है तो उसे छोड़कर भी नई व्यवस्था बन सकती है। इसी तरह वर्तमान संविधान की भी अच्छी बातों को उसमें रखा जा सकता हैं। ऐसी चर्चा जारी रखनी चाहिए।

(झ). श्री राधा कृष्ण गेरा, अशोक विहार फेज 1 दिल्ली।

प्रश्न– ज्ञान तत्व अंक 144 में भाई मोहम्मद शफी आजाद का पत्र पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके सभी प्रश्न (ऐतिहासिक)बीते काल के हैं।

आवेश उन्मत्त उल्माओं के अनुयायियों ने निर्दोषों पर अत्याचार मार–पीट आदि अवर्णित जुल्म किये। खेद का विषय है कि 16 वीं शताब्दी (हिजरी)की आग लगी अभी तक शान्त नहीं हुई और न ही उल्मावाओं ने उसे शान्त करने की कोशिश की अपितु, स्वार्थवश उसे सुलगाए रखा। स्वार्थसिद्धि में तल्लीन हैं। कब तक सादा सोच वालों को लड़ातें रहेंगे। अज्ञानता वश आम आदमी (मुस्लिम)इस दूषित विचारों का अंधाधुन्ध अनुसरण करता है। पढ़ा –लिखा बुद्धिजीवी भी इस मानसिकता से बाहर नहीं निकल सकता है। न ही वह चाहता है।

क्या मिलकर इस मानसिकता से बाहर निकलने का प्रयत्न कर सकते है । उस शोषण से राहत दे सकेंगे। अपने मन का मंथन करें। सभी प्राणी मात्र अपने संकुचित विचारों की परिधि के बन्धक हैं। इतिहास से सीख तो ली जा सकती है। परन्तु भूल नहीं सुधारी जा सकती। तत्कालीन परिस्थितियों में जो होना उचित लगे, उस ओर अग्रसर होना चाहिए। समाज उत्थान में लगे।

(ट). श्री विश्वनाथ सिंह, हिल्सा, नालंदा, बिहार।

प्रश्न – आप अच्छे विचारक भी हैं और चिन्तक भी और साथ ही साथ आप साधक भी हैं। आपकी साधना स्थूल भी है और सूक्ष्म भी। आप निर्णय स्व से करते हैं,शास्त्र का ज्यादा हस्तक्षेप नहीं हैं। निर्णय स्पष्ट, तर्कसंगत और व्यावहारिक होता है। विश्वास होता है कि जिस तरह सुकरात, कबीर, मार्क्स और डार्विन जैसे स्वतंत्र विचारकों ने विश्व में स्वतंत्र विचार मंथन को समृद्ध किया है उसी दिशा में आप भी लगातार बढ़ रहे हैं।

फिर भी मेरे मन में आपके व्यक्तिगत विचारों या निष्कर्षो पर प्रश्न उठते रहते हैं। मैं कई बार रामानुजगंज भी गया। आपके कार्य, विचार कार्यक्षेत्र को नजदीक से देखा समझा। फिर भी कुछ प्रश्न अब तक अनुत्तरित ही हैं –

(1) धर्म का अर्थ बाहरी तक ही सीमित क्यों? आन्तरिक क्यों नहीं?
(2) आशों रजनीश की पुस्तकों के विषय में आपकी राय क्या है?
(3) आपकी सोच मात्र सामाजिक, राजनैतिक या भौतिक तक ही सीमित क्यों है?
(4) शिक्षा की अपेक्षा श्रम को आधार क्यों बनाना चाहिए?

उत्तर – ओशों रजनीश की पुस्तकें मैंने पढ़ी नहीं है। इन पुस्तकों को पढ़ चुके विद्वानों के निष्कर्षो के आधार पर मामूली सी जानकारी मात्र है जो कोई प्रमाणित आधार नहीं।

श्रम की अपेक्षा बुद्धि लाभदायक स्थिति में होती है और बुद्धि की अपेक्षा धन क्योंकि धन के साथ बुद्धि और श्रम स्वाभाविक रूप से जुड़ जाता है और बुद्धि के साथ भी श्रम। सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था में बुद्धि और धन की तो भूमिका होती है किन्तु श्रम की नहीं। इस लिए श्रम को कुछ विशेष सुरक्षात्मक प्रावधानों की आवश्यकता होती है। बुद्धिजीवियों द्वारा श्रम की उपेक्षा और अन्याय का अमानवीय चेहरा हम छूआछूत या रूढ़िगत जातीय व्यवस्था के रूप में देश चुके हैं इस अमानवीयता का लाभ उठाकर कुछ अन्य बुद्धिजीवियों ने वैसी ही घृणा और टकराव को आधार बनाकर वर्ग संघर्ष का खेल खेलने की योजना बना ली है। श्रम बेचारा न पहले सुखी था न अब कोई लक्षण है।शोषण करने वालों के नाम जाति पहचान और नारे बदल सकते हैं।

अब भी आश्वस्त हूँ कि श्रम को बुद्धि और धन के मुकाबले में खड़ा करने का प्रयत्न न्याय संगत भी है और मानवीय भी यदि यह प्रयत्न ठीक ढंग से नहीं हुआ तो राजनैतिक स्वार्थ सत्ता परिवर्तन के लिए श्रम को आधार बनाकर श्रम को ठगते रहेगा तथा सामाजिक स्वार्थ जातीय आरक्षण के नाम पर श्रम को ठगता रहेगा। श्रम बेचारे का हजारों वर्षो से सवर्णो और पूंजीपतियों के द्वारा व्यवस्था के नाम पर शोषण हुआ है। अब उस शोषण में बुद्धिजीवी और वामपंथी राजनेता भी शामिल हो गये हैं।

किसी अन्य के लिए किये जाने वाले निस्वार्थ प्रयत्न को धर्म कहते है। अपने लिए किये जाने वाले निस्वार्थ प्रयत्न को आध्यात्म कह सकते है। जब कोई गृहस्थ परिवार व्यवस्था से आगे बढ़कर समाज सेवा की दिशा में चलना शुरू करता है तो वह उसकी धर्म की लाइन है। किन्तु जब वह व्यक्ति परिवार व्यवस्था से आगे बढ़कर आत्म उत्थान की दिशा पकड़ता है तो वह उसका आध्यात्म है।

धर्म नहीं। कुछ महापुरूष बीच के मार्ग से समन्वय की दिशा में भी चलते हैं। मैंने एक लाइन पकड़ी है। मैं आध्यात्म लाइन पर बिल्कुल नहीं हूँ जबकि आप (विश्वनाथ सिंह जी)आध्यात्म और धर्म के समन्वय की लीक पर हैं। इसलिए यह अन्तर दिखना स्वाभाविक है।

राजनीति ने धर्म व्यवस्था को भी प्रभावित किया है और समाज व्यवस्था को भी। मैं यदि राजनीति की कुटिल चालों से दूरी बनाकर धर्म और समाज सेवा में लग जाऊ तो सम्मान और प्रसिद्धि तो बहुत मिलेगी किन्तु न तो मुझे ईश्वर क्षमा करेगा न ही आत्म संतुष्टि होगी। यही कारण है कि मैं ऊँची– ऊँची आध्यात्म की चर्चा न करके भौतिक सामाजिक राजनैतिक विषयों तक केन्द्रित हूँ। आशा है कि परिस्थितियों और प्राथमिकताओं के आधार पर मेरी स्थिति को आप महसूस करने की कोशिश करेंगे।

(ठ) श्री अमर सिंह आर्य, जयपुर।

प्रश्न ज्ञान तत्व के अंक 146 के पृष्ठ–7 पर प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर लगता है आपकी गहन सोच की उपज है कि स्वामी दयानन्द एवं महात्मा गांधी द्वारा अछुतों तथा पिछड़ों को समाज में वर्ण के रूप समझकर समन्वय के प्रयास किये गये। स्वामी दयानन्द वर्ग व्यवस्था के पक्षधर थे, वर्ग के नहीं। वर्ण गुण कार्य, स्वभाव पर आधारित होता है न कि जन्म पर, उस पर और स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। मेरा मत अभी इसलिए नहीं दे रहा हूँ कि किसी पक्ष का पक्षधर हूँ। ऐसा माना जाना संभव है।

2. इसी अंक के पृष्ठ 10 पर आपने ठीक लिखा कि श्रमजीवी गरीब किसान में आन्दोलन करने की शक्ति, योग्यता ही नही बची। मायावती गन्ने का दाम 25 रूपये प्रति क्विंटल कम करके भी आराम से सत्ता में है जगह–जगह सेज से पस्त किसान हो रहे हैं, परन्तु प्रभावी जनआन्दोलन खड़े होने के मूल्य में कौन सी प्रवृत्तियां काम कर रही है यह देखना आवश्यक है।
3. अंक 146 की ही पृष्ठ 12,13 पर डॉ0 गोपीरंजन साक्षी ने आर्यो के आगमन के बाद मूलवासियों की दशा गिरने जिसे आज दलित नाम दिया जाता है कि दीन–दशा की जनक मनुस्मृति को मान रहे हैं। इस प्रश्न को हम दो भागों में बांटकर लिखेंगे।

(अ) आर्यो का बाहर से आगमन–लोगों में यह विचार ही ज्यादा प्रचलित है कि आर्य बाहर से आये थे चूंकि हमें मैकाल प्रदत्त इतिहास पढ़ाया गया। मुस्लिम भी बाहर से आये, यहीं रहे नंगे राज्य किया। अंग्रेज भी बाहर से आये परन्तु अंग्रेजों से देश को आजाद कराने के प्रयास 1857 से पहले से ही होने लगे थे, 1857 में क जन आन्दोलन खड़ा हो गया। दुर्भाग्य से वह विफल हो गया। स्थिति को भाप कर अंग्रेजों ने यह झूठ गढ़ कि आर्य बाहर से आये थे । उन्होंने यहॉ के मूलवासियों को जीतकर राज्य किया तो हम अर्थात् अंग्रेज बाहर से आये तो फर्क क्या रहा अर्थात् हम पर राज्य करने के औचित्य को सिद्ध करने के लिए ऐसा षडयंत्र किया और उसमें वे सफल हुए।

वर्तमान में पाठ्य पुस्तकों में इतिहास के नाम पर गलत तथ्य पढ़ाए जा रहे हैं। यह प्रमाण जो बताने जा रहे हैं न तो आर्यो का है न भारतवासियों का है न

इतिहास के विद्वानों का है। सारे संसार के वैज्ञानिको की एक समिति बनी उसमें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भू–गर्भशास्त्र जिसके प्रमुख श्री मैरिन रैमो जी असेच्युएट्स इन्स्टीटयूट ऑफ टैक्नालाजी अमेरिका के थे। समिति ने अपने संशोधित निष्कर्ष जनवरी 1995 के प्रथम सप्ताह में बी0बी0सी0 के डाक्यूमैन्ट्री द्वारा प्रकाशित किये। भूगर्भशास्त्रज्ञों पर एक लेख 'साउथ चायना मार्निंग पोस्ट' में हांगकांग से प्रकाशित हुआ। इन शास्त्रज्ञों तिब्बत के भूगर्भ शास्त्रीय तत्वों पर विशेष शोध किये। वे कहते हैं कि पांच से ग्यारह दस लक्ष्य वर्ष पूर्व तिब्बत की भूमि स्थिर होने लगी थी। सृष्टि उत्पत्ति के कम में वातावरण की निर्मित के लिए सुयोग्य परिस्थिति की निर्मित हिमालय पर्वतों में ही गत 40 दस लक्ष्य समाचार पत्र के पृष्ठ 16 पर दिनांक 16 जनवरी 1995 को प्रकाशित हुआ शीर्षक था ।''**Life may have been first formed in Tibet" say Geologist –**

यदि मानव की उत्पत्ति ही तिब्बत के क्षेत्र में हुई जो आर्यवर्त के नाम से जाना जाता था तो भारत में आर्य बाहर से आने प्रश्न ही नहीं उठता जैसे 1995 में दुनिया के भू–गर्भशास्त्रज्ञों ने परिश्रम किया हमारे विद्वान अथक परिश्रम कर शोध करें और ऐसे ठोस प्रमाण शासन एवं हठवादी इतिहासकारों के सामने प्रस्तुत करें। माधव के पाण्डे का एक लेख परोपकारी पत्रिका में मार्च 2002 के अंक में भी छपा था।

(ब) दलितों की दीन दशा की जनक मनुस्मति रही– अंक 146 पृष्ठ 13 के संबंध में निवेदन है कि हमारे मूल प्रन्थ शास्त्र प्राचीनकाल के हैं। अनेक विद्वानों ने प्रक्षिप्त (मिलावट)इन ग्रन्थों में की हैं। इन ग्रन्थों का अध्ययन किये बिना भी अनेक लोग मनगढ़न्त आरोप लगाते रहते हैं। अनेक विद्वानों से चर्चा के समय भी ऐसा देखा गया है जब विद्वान समाज में प्रतिस्थापित हो जाता है तो उसके विचारों को ही मान्यता मिलती है चाहे वह तथ्यों से हटकर बात कह रहा हो। जब ऐसे विद्वानों से प्रश्न किये जाते तो वे उत्तर नहीं देते।

जहॉ तक मनुस्मृति का प्रश्न है लम्बें शोध के बाद एक विद्वान डॉ0 सुरेन्द्र कुमार शर्मा अथक परिश्रम कर विशुद्ध मनुस्मृति नाम से पुस्तक लिखी है। हर किसी को उसे पढ़ना चाहिए पुस्तक विजयकुमार गोन्दिराम हासानन्द 4408 नई सड़क दिल्ली – 110006 से प्राप्त की जा सकती है।

आरक्षण के संबंध में अनेक गॉवों में मैंने संपर्क किया। आरक्षण प्राप्त लोगों का अलग वर्ग बन गया और वे आरक्षण लाभ को अपने परिवार रिश्तेदारों में बांट रहे हैं, परन्तु उसी वर्ग के निर्धन जरूरतमंद लोगों को आरक्षण का कोई लाभ नहीं पहुंच पा रहा है।

आरक्षण पर सर्वे हो विश्लेषण हो और बी0पी0एल0 को लोगों को आरक्षण मिलें। समर्थकों को धीरे–धीरे आरक्षण दायरे बाहर किया जाये तब देश की गरीबी एवं सही लोगों को आरक्षण मिल पाएगा।

उत्तर – आपने वर्ण व्यवस्था जन्म से या कर्म से मुद्दे पर अपनी राय दी। मैं सहमत हूँ कि वर्ण व्यवस्था पहले गुण कर्म स्वभाव से थी जो बाद में जन्म पर आधारित हो गई। आदर्श स्थिति तो यही होगी कि वर्ण व्यवस्था को जन्म से नकार

कर कर्म की ओर मोड़ा जाय किन्तु जब तब ऐसा नहीं हो पाता तब तक वर्ग संघर्ष को वर्ग समन्वय की दिशा में मोड़ने का प्रयास करें। मेरी जानकारी के अनुसार अछूत या अवर्ण शूद्र न होकर वर्ण व्यवस्था से बाहर थे । जन्मना जायते शूद्रः के अनुसार जब बालक गुरूकुलों में पढ़ते थे तब प्रारम्भ के दो वर्ष ब्रम्हण की शिक्षा, अनुत्तीर्ण बालक अगले दो वर्ष क्षत्रिय की शिक्षा, अनुत्तीर्ण बालक अगले दो वर्ष वैश्य की शिक्षा और उसके बाद भी अनुत्तीर्ण बालक शूद्र ही रह जाता था। इस तरह ब्रम्हण का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की उम्र में क्षत्रिय का दस वर्ष की उम्र में, वैश्य का बारह वर्ष की उम्र में और शुद्र जीवन भर यज्ञोपवीत विहीन होता था। मैं इस व्यवस्था को अब तक प्रमाणित तो नहीं कर पाता किन्तु विचार मंथन का अवश्य इच्छुक हूँ।

मैंने अब तक यही सुना है कि अवर्ण शूद्र नहीं है, बल्कि ऐसे अछूत हैं जिनमें अधिकांश उच्च वर्ग के लोग हैं किन्तु सामाजिक भूलों के कारण दण्ड स्वरूप या अत्याचार रूप में वर्ण बहिष्कृत लोगों की सन्तानों को योग्यतानुसार वर्ण संघर्ष का रूप देना चाहते हैं जो घातक है। इसे वर्ग समन्वय की दिशा देनी चाहिए। मैं इस संबंध में ज्यादा जानकार नहीं होने से और विचार –मंथन का इच्छुक हूँ।

आर्य बाहर से आये या भारत के मूल निवासी है इस संबंध मैं आपने स्थिति स्पष्ट कर दी है। मुझे इस संबंध में अलग से कुछ नहीं कहना है। मनुस्मृति में कितना सही है कितना प्रक्षिप्त यह भी मेरे लिए चर्चा का विषय नहीं है। आपने स्पष्ट किया ही है। यदि कोई और प्रश्न होगा तो आप विद्वानों से उत्तर की अपेक्षा करूँगा।

आरक्षण के विषय में मेरी आपसे सहमति है।

शंकरपुर
विकास मार्ग

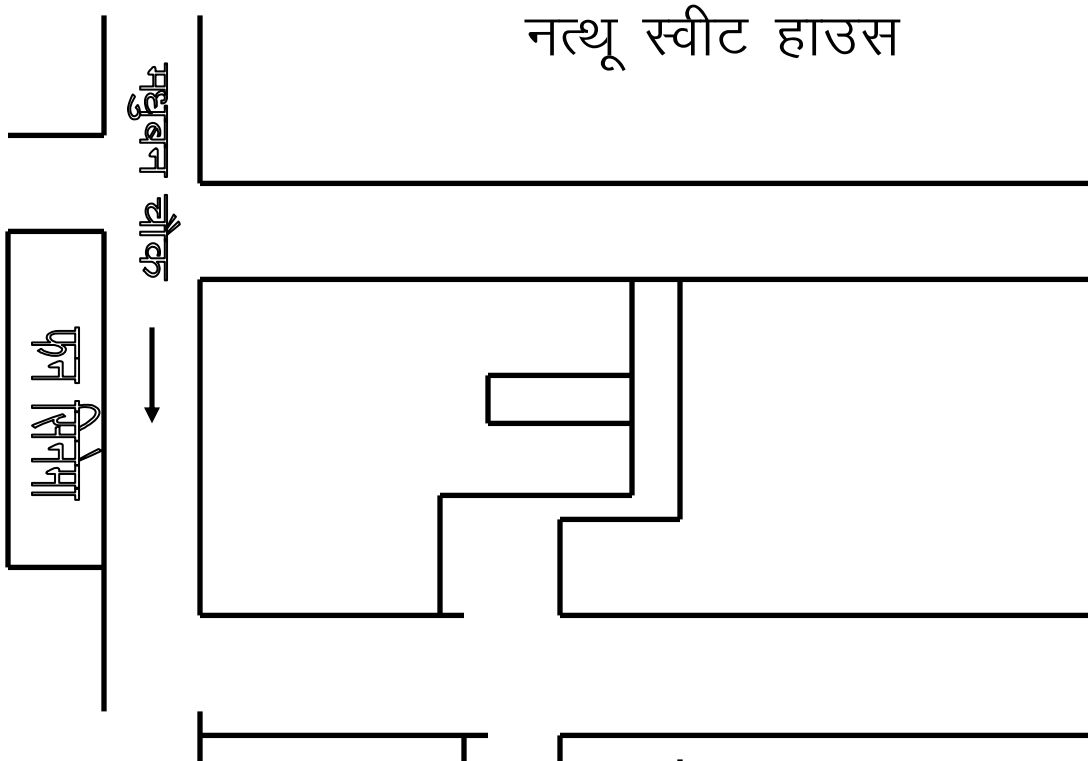

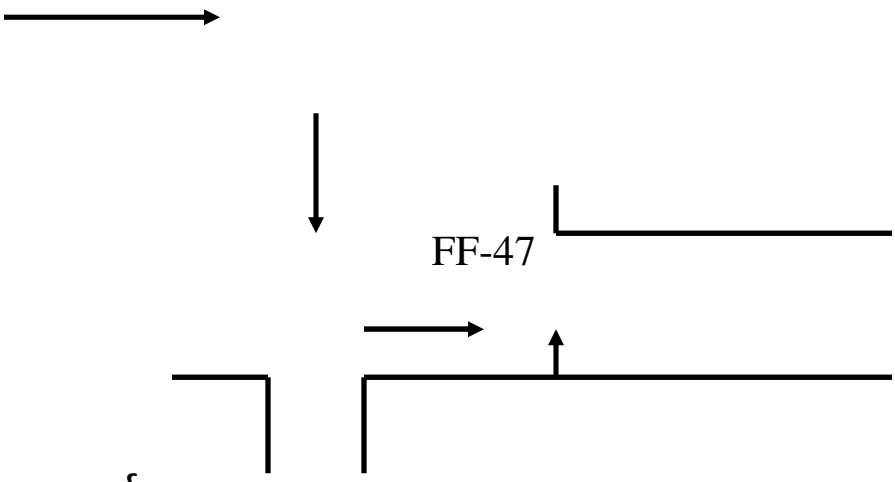

कार्यालय का वर्तमान पता –

फ्लैट–401, एफ.एफ.–47,
पुराना थाना, मंगल बाजार, दिल्ली –92
मो. 9968374100